पति कॉमरेड क्यों नहीं हो सकता ? तसलीमा नसरीन के उपन्यासों का पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य

चेतन विष्णु रवेलिया
शोधार्थी - न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज, अहमदनगर (स्वशासी)
ईमेल – chetanraweliya4431@gmail.com
शोध निर्देशिका - **प्रो. डॉ. सुनीता मच्छिंद्र मोटे**
न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज (स्वशासी)

"मैंने तो एक दोस्त चाहा था, लेकिन सभी पति बनना चाहते हैं, सफल होना चाहते हैं। शादी के कागज़ – पत्तर पर दस्तखत हुए नहीं कि ये मर्द लोग बीवी को अपनी जायदाद मान लेते हैं। कोई भी औरत का अलग अस्तित्व स्वीकार नहीं करना चाहता। कोई दोस्त नहीं बनना चाहता।"1 (दो औरतों के पत्र)

स्त्री विमर्श के विभिन्न मुद्दों में एक मुद्दा यह भी है कि पति कॉमरेड / साथी / प्रेमी के रूप में आखिर क्यों नहीं बनता या मिलता किसी स्त्री को। यह हर उस स्त्री का सपना है जो पितृसत्ता से क्षयग्रस्त इस दुनिया में निरंतर जद्दोजहद कर रही है अतिपुरुष को पुरुष बनाने में और पुरुष को कॉमरेड / साथी बनाने में कि जिसके साथ जीना आसान हो सके। युवावर्ग मित्रों में तो काफी कॉमरेड गिरी करते फिरते हैं और बात जब घर – परिवार की आती है तो यह विचार फुर्र हो जाता है चिड़िया उड़ी फुर्र भाव से ही। पति बनते ही वे आ जाते हैं मालिक की भूमिका में, परमेश्वर की भूमिका में। और यहाँ आ जुड़ता है धर्म का मुद्दा और तमाम सामाजिक रूढ़ियों - संरचनाओं का भी जो मर्द को दर्द नहीं होता, अरे लड़का होकर रोता है जैसे तमाम फिकरे कसते हैं। जरा - सी संवेदनशीलता से पुरुष का पौरुष खटाई में पड़ जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख में तसलीमा नसरीन के उपन्यासों में पितृसत्ता की शिनाख्त की गई है। धर्म हो, विवाह संस्था हो या स्त्रियों को लेकर निर्मित सामाजिक रूढ़ियाँ लेखिका सभी का अतिक्रमण करती हैं।

तसलीमा नसरीन बांग्लादेशी मूल की विश्व विख्यात और चर्चित स्त्रीवादी कवयित्री, लेखिका, कथाकार – उपन्यासकार हैं। धर्मनिरपेक्ष मानवतावादी कार्यकर्ता के रुप में भी इनकी बहुत ख्याति है। अपनी साहित्यिक कृतियों से वे विश्व में अपना परचम लहरा चुकी हैं। पच्चीस वर्षों से निर्वासन झेलते हुए भी सतत सृजनरत रहना कम महत्व की बात नहीं। तसलीमा का नाम और जीवन संघर्ष का परिचायक बन चुका है। अपने ही देश से निष्कासन झेलने और विस्थापित हो जाने की पीड़ा उनके समूचे साहित्य में यत्र – तत्र अभिव्यक्त हुई है। स्त्रीवाद, मानवतावाद, सांप्रदायिकता के बृहत्तर आयामों को अभिव्यक्त करते हुए न जाने कितनी ही स्त्रियों को सशक्तिकरण का पाठ पढ़ाया तसलीमा ने। वे कई मायनों में विशिष्ट हैं। उनका व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं में प्रखर स्त्रीवादी होना भी समाविष्ट है। उनकी साहित्यिक यात्रा का श्रीगणेश कविता द्वारा ही हुआ। अपने बड़े भाई द्वारा रवींद्रनाथ की कविताओं की पुस्तकें पढ़वाना, काव्यपाठ का आयोजन करना जैसे उपक्रमों ने तसलीमा को साहित्य से जोड़ा और उन्होंने कविता का ककहरा सीखा। छोटी उम्र में ही वे 'संझा बाती' शीर्षक से एक पत्रिका का संपादन कार्य

भी करने लगी थीं। यह लेखन यात्रा शनै: — शनै: पुष्पित और पल्लवित होती गई और तसलीमा की लेखनी भी मंझती गई । इसी क्रम में उनकी कलामों की पुस्तक 'निर्वाचित कलाम' प्रकाशित हुई जो हिंदी में 'औरत के हक़ में' शीर्षक से प्रकाशित हुई। तसलीमा की सबसे चर्चित पुस्तकों में इस पुस्तक की गणना की जाती है। इसे आनंद पुरस्कार से भी पुरस्कृत किया जा चुका है। यह पुस्तक एक प्रकार से बांग्लादेश में और प्रकारांतर से समूचे विश्व में, धर्मों में व्याप्त पितृसत्तात्मक संरचनाओं की गहरी शिनाख्त करती है और स्त्रियों की मुक्ति के प्रश्न को पुन: साहित्य के केंद्र में लाने का उपक्रम करती है। लेखिका उन सभी सड़े — गले सामाजिक रीति — रिवाजों, पितृसत्तात्मक संरचनाओं, और विभेदकारी धर्मों की कड़ी आलोचना करती हैं जो स्त्री को इंसान के पद से ही च्युत करते हैं। वे स्त्री — मुक्ति के लिए आवश्यक मानती हैं पूरी समाजव्यवस्था और राष्ट्रीय ढाँचा बदलने के सिवाय जैसे नारी — मुक्ति संभव नहीं, उसी तरह धर्म की ज़ंजीर से बाहर आए बगैर नारी मुक्ति असंभव है।

पितृसत्ता का अर्थ :

यह स्त्रीवादी साहित्य और स्त्री विमर्श का ही अवदान है कि उसी ने पितृसत्ता की संकल्पना को और विस्तार से समझने और समझाने के सूत्र दिए और उसकी आलोचना करने का कार्यारंभ किया। पितृसत्ता, शब्द से जो ध्वनित होता है वह है पितृ — 'पिता' प्रकारांतर से पुरुष की सत्ता और जायज है कि सत्ता यदि पुरुष के हाथ में होगी तो वही मालिक की भूमिका में भी होगा बल्कि कहना चाहिए कि होता है। यह एक सोच है जिससे पुरुष तो क्या स्त्री भी मुक्त नहीं है। व्यवस्था के स्तर पर यह नीति — नियमों को बनाती है और जिसमें निर्णायक या कर्ता की स्थिति में पुरुष होता है । विभेदकारी यह इस अर्थ में है कि इसके अंतर्गत एक मालिक और दूसरा गुलाम की स्थिति में आ जाता है। अर्थात शोषक और शोषित जैसे वर्गों का निर्माण करने में इसकी भूमिका निहित होती है। तो फिर यह प्रश्न उठना लाजिमी है कि स्त्रीवाद क्या करता है या चाहता है ? सत्ता अपने हाथ में लेना ? नहीं। सामान्य तौर पर स्त्री विमर्श को लेकर यही मान्यता औसत भारतीय व्यक्ति की दृष्टिगोचर होती है। बल्कि स्त्रीवाद का असल चरित्र स्त्री — पुरुष संबंधों की पड़ताल कर चूक आखिर कहाँ रह गई या है इसका विश्लेषण करनेवाली सैद्धांतिकी प्रस्तुत करना है जिसके केंद्र में जेंडर स्टीरियो टाइप्स (लिंग भेद, या लिंग संबंधी रुढियों), पितृसत्तात्मक संरचना का विश्लेषण करना, स्त्री मुक्ति के मुद्दों को विश्लेषित करने का कार्य करना है । डॉ. किंगसन की मान्यता है कि "पितृसत्ता जेंडर, पद, उम्र और वर्ग के बीच संश्लिष्ट किस्म का शक्ति संबंध है।"2 इसी के साथ यह भी कहा जा सकता है कि यह संकल्पना स्थिर नहीं अपितु गतिशील होती है। इसका रूप हर जगह एक जैसा नहीं होता। घर — परिवार, समाज, धर्म, राज्य, राष्ट्र सभी स्तरों पर इसका रूप भिन्न — भिन्न होता है। वस्तुत: सभी अस्मितामूलक विमर्शों यथा स्त्री विमर्श, दलित विमर्श , थर्ड जेंडर विमर्श सभी में पितृसत्ता शक्ति और सूत्रों को अपने हाथ में लेता ही दृष्टिगोचर होता है । औसत भारतीय व्यक्ति यह भी मानता है कि पितृसत्ता अर्थात मर्दानगी का प्रतीक इसलिए पुरुष ने कोमल नहीं दिखना है, संवेदनशील भी नहीं बनना है। उसने रहना है सख्त और कठोर ताकि बची रहे सत्ता और उसका आतंक । वस्तुत: वह पितृसत्ता ही है जिसके कारण 'लिंगभेद', 'स्त्रियों का दोयम दर्जा', 'श्रम का असमान विभाजन' जैसी समस्याएँ आज तक जैसे की तैसी बनी हुई हैं। पितृसत्ता हर देश में, समाज में किसी न किसी रूप में अस्तित्व में है ही। इसका दायरा घर — परिवार से आरंभ होकर, समाज, राज्य, धर्म, विवाह संस्था, राष्ट्र तक जाता है । और अपनी प्रकृति में ये सभी पितृसत्तात्मक निर्मितियाँ हैं, विभेदकारी, दमनकारी और शोषक हैं। विवाह जिसे दो आत्माओं का मिलन कहकर संबोधित किया जाता है वस्तुत: पुरुष वर्चस्व की सुनियोजित परंपरा है।

तसलीमा नसरीन के उपन्यासों में पितृसत्ता :

तसलीमा की नायिकाएँ अपने प्रत्येक उपन्यास में कॉमरेड / साथी और प्रकारांतर से प्रेमी पुरुष के संधान में दृष्टिगोचर होती हैं किंतु उनकी त्रासदी यह है कि वे अपने पतियों को मालिक की ही भूमिका में प्राप्त करने को अभिशप्त हैं। उनके पति परमेश्वर ही बनना चाहते हैं सहचर, साथी नहीं । 'दो औरतों के पत्र' की जमुना पितृसत्ता की दोहरी मार झेलती है । एक ओर पति तो दूसरी ओर पिता। उसके पिता ने उसका विवाह साबिर से कराया था । जो कुछ दिन ठीक रहने के उपरांत अपने असली रूप में आ जाता है पत्नी को आश्रित, घरेलू , बनाकर रखने जैसी बातें उसके पितृसत्तात्मक सोच से ग्रस्त होने के सबूत हैं । वह चाहता है कि जमुना अपनी तनख्वाह उसके हाथ में रख दे । इतने पर भी जमुना जब तस से मस न हुई तो वह अगली चाल चलता है दूसरा विवाह कर दीवा को घर में लेकर आता है सिर्फ जमुना को प्रताड़ित करने के लिए। किंतु जमुना है इस मामले में बहुत सुलझी हुई। जो प्यार ही नहीं करता ऐसा पति चला जाना ही बेहतर इसे वह जानती है और मानती भी। इस प्रकार जमुना का विवाह टूट जाता है और अब वह अकेली रहकर नौकरी करती है । नौकरीपेशा होने के बावजूद उसका कोई वजूद दिखाई इसलिए नहीं देता क्योंकि पिता द्वारा उस पर कठोर नियंत्रण रखा जाता है। पिता उसकी शादी टूटने के लिए भी उसे ही जिम्मेदार मानते हैं । स्त्री का अकेले जीवन — यापन करना आज भी भारत और बांग्लादेश जैसे पितृसत्तामक समाज संरचना वाले देशों में दुष्कर ही है । स्त्रियों की पराधीनता का समाधान उसे आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने की बात कहनेवाले यह क्यों भूल जाते हैं कि असल में तो समाज में तस्वीर बहुत धुँधली ही दिखाई देती है । लेखिका की ऊँगली इसी बात पर है कि स्त्री भले नौकरी करे, स्वयं के भविष्य की कर्त्री बने किंतु उसे रहना पितृसत्ता के नियमों के अनुरूप और अधीन ही है । यहाँ यह भी विचारणीय है कि स्त्रियाँ भले नौकरी करती हों किंतु अपने मन मुताबिक़ उन पैसों का प्रयोग कर भी पाती हैं या नहीं। कितनी ही स्त्रियों को 'शट अप एंड गेट आउट' वाली राजनीति का शिकार होकर केवल पति सुरक्षा प्रदान करता है इसलिए निभाते रहने की जद्दोजहद करनी पड़ती रहती है । पति चाहे जैसा हो पत्नी उसके अधीन और आश्रित ही शोभा देती है यह तथाकथित समाज का नियम है इसलिए तो जमुना कहती है, "मैं हुमायूँ नामक एक दारुबाज और लंपट मर्द के आश्रय में हूँ। भई, वह दारुबाज हो, लंपट हो, मगर है तो आखिर मर्द ! मर्द के आश्रय में रहो, तो किसी की भी अविश्वासी नज़रें, दरवाजे की सूराख से नहीं चिपकी होतीं।" 3

जमुना अपने होने को असर्ट (दावा) करनेवाली नायिका है । साबिर द्वारा दूसरा विवाह करने पर भी जमुना न टूटती है न अबला वाला भाव ही उसे छू पाता है । यदि साबिर दूसरा विवाह कर सकता है तो वह क्यों नहीं ? वस्तुत: लेखिका पुरुष का प्रतिपक्ष गढ़ती हैं उतने ही तबोताब का जितना कि पुरुष होता है । अंतर यहाँ यह है कि पुरुष अपनी शक्ति का अर्जन सामाजिक नीति - नियमों को गढ़कर करता है और पितृसत्ता को बचाए रखने हेतु गढ़ी गई समाजव्यवस्था को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल कर करता है जबकि लेखिका उन्हें नेस्तनाबूत कर । समाज की नैतिकता और कठोर पितृसत्ता के अनुरूप जमुना का साबिर के उपरांत हुमायूँ से विवाह करना और उसके उपरांत पाशा से जुड़ना किसी भी दृष्टी से पचाने योग्य नहीं है । तथाकथित सभ्य समाज की नज़र में तो यह बदचलनी होगी तो क्या करना चाहिए था जमुना ने ? समाज के नियमों के अनुरूप उसने पहला विवाह टूटने पर भली लड़की बनकर घर पर रहना चाहिए था लेकिन यह लेखिका को मंजूर नहीं । जब जीवन ही इतना पेंचदार और दुरूह हो चला है तो लेखिका से कैसे अपेक्षा की जा सकती है कि वे एक आदर्शवादी कहानी इस उपन्यास में प्रस्तुत करतीं ! दूसरी बात यह कि यह सारा उपक्रम लेखिका का प्रेमी पुरुष का संधान है। यदि वह असफल होती है तो बारंबार प्रयत्न करना चाहती है।

स्त्रीवादी साहित्य में गृहस्थ जीवन में प्रेम के अभाव का चित्रण सर्वथा देखा जा सकता है । पति द्वारा केवल उसकी नज़र से अर्थात जैसा वह चाहता है वैसा ही बनते — बनते स्त्रियाँ चालीस के पार पहुँच जाती है किंतु वैवाहिक जीवन में प्रेम का अभाव ज्यों का त्यों बना रहता है । अपनी तृप्ति का प्रश्न उठाती स्त्रियाँ बदचलन साबित और घोषित कर दी जाती हैं । यह नियम आखिर किसने बनाया ? विवाह यदि दो आत्माओं का मिलन है तो उसके अनुरूप व्यवहार करते हुए पुरुष क्यों दिखाई नहीं देता ? यह स्त्रीवाद का ही अवदान है कि उसने प्रेम को भी गहन राजनीतिक षड्यंत्र मानकर उसकी आलोचना का बीड़ा उठाया । शूलमिथ फायर स्टोन का नाम इस दिशा में महत्वपूर्ण है कि उन्होंने स्त्रीवादी दृष्टी से प्रेम की राजनीति को समझा । सुजाता इस संदर्भ में लिखती हैं, "प्रेम भी पॉलिटिक्स है, अगर यह एक को अकूत सत्ता देता है और दूसरे को विवश बनाता है ।"4 प्रेम अपने शुद्ध रूप में एक — दूसरे को स्वतंत्रता प्रदान करते हुए आगे बढ़ने हेतु प्रेरित करता है थोड़ा — और मनुष्य बनने हेतु । उसमें राजनीति का समावेश तब होता है जब अपने शुद्ध रूप से हटकर वह केवल देह तक सीमित रह जाए और दूसरे पर हावी होने लगे । यदि दूसरे को साँस लेने की भी मोहलत न बचे और प्रेम जी का जंजाल बन जाए तो जमुना जैसी स्त्रियों को कहना पड़ता है, "मर्द, औरतों के तन — मन पर अपना आधिपत्य चाहते हैं तथा औरतें भी मर्दों की इच्छा की बलिवेदी पर अपनी जान निसार कर देना चाहती हैं, अब और लोग चाहे जो कहें, मैं इसे प्यार नहीं कह सकती । किसी को हथकड़ी — बेड़ियों में जकड़ देने को प्यार नहीं कहते ।"5 शोध उपन्यास की नायिका झुमूर के साथ तो यह बात है कि उसने तो हारून से प्रेमविवाह किया था और जैसे ही विवाह हो गया हारून के तो तेवर ही बदल गए । वह प्रेमी से मालिक की भूमिका में ही आ धमका । पत्नी के गर्भवती होने पर भी वह पत्नी के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं निभाता । यहाँ लेखिका का निशाना विवाह संस्था और उससे आनेवाली तब्दीलियों पर है । इसमें कोई संदेह नहीं कि विवाह संस्था और परिवार भी स्त्रियों की पराधीनता के विभिन्न कारणों में से एक है और एक पौरुषपूर्ण व्यवस्था है जिसके तहत स्त्रियों की स्वाधीनता का दमन तो होता ही है शोषण भी भरपूर किया जाता है । यही कारण है कि कात्यायनी परिवार को पितृसत्ता का पहला गढ़ घोषित करती हैं । बकौल रंजना श्रीवास्तव "विवाह पुरुष सामंतवाद की एक पारंपरिक व्यवस्था है जिसमें स्त्री पर दबाव की परिस्थितियों का सामाजिक विधान उसकी स्वाभाविक कामनाओं और इच्छाओं का दमन करता है । त्याग व समर्पण की व्यवस्था का नीतिशास्त्र स्त्री की स्वाभाविकता को बुद्धिमत्ता में परिवर्तित कर उसकी इंसानी चाहतों का वध कर डालता है ।" 6

झुमूर पर तरह — तरह के प्रतिबंध लगाकर उसे एक पारंपारिक स्त्री के रूप में तब्दील करने की सारी कवायद विस्तार से वर्णित की गई है । अपेक्षाओं के सौंदर्यशास्त्र का निर्वाह उसे ही करना पड़ता है । वह केवल देह में रिड्यूस करके देखी जाती है । सेक्स वर्कर और एक गृहस्थिन की स्थिति में असमानता होने की बात भी स्पष्ट होने लगती है । हारून अति पौरुषी मानसिकता से ग्रस्त होकर चरित्र केवल पत्नी का ही अच्छा चाहता है । गृहस्थी में पत्नी का हाथ बँटाना उसे अपना पौरुष खटाई में पड़ना लगता है । हारून का अपनी पत्नी के सतीत्व को लेकर शक इतना अधिक होता है कि विवाह के डेढ़ महीने के भीतर उसका गर्भवती होना उसे और शक्की और झक्की बनाकर छोड़ता है जिसकी परिणति होती है झुमूर पर गहरा दबाव बनाकर उसका गर्भपात करवा देना । कहानी का क्लाइमेक्स वहाँ से शुरु होता है जब झुमूर दूसरी बार गर्भवती होती है । हारून और उसके घरवाले भी यकीन रखते हैं कि यह बच्चा हारून का ही है । सभी के व्यवहार में आमूल — चूल परिवर्तन को भी लक्षित किया जा सकता है । सभी झुमूर को लेकर केयरिंग हो जाते हैं । लेकिन झुमूर समझ जाती है कि यह सब उसके लिए नहीं अपितु उसके पेट के बच्चे के लिए है जो उस घर का वंश

दीप है। ससुराल पक्ष के सभी नियमों को मानकर, पति की अच्छी बहुरिया बनकर भी उसके साथ अविश्वास और चरित्र हनन का यह जो खेल खेला गया उसका प्रतिशोध वह तिरिया चरित्तर वाली रणनीति अपनाकर लेती है। वह अफजल से प्रेम करने लग जाती है और उसी से गर्भ धारण करती है। यह एक स्त्री का समूची पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देना है। साधारणत: ऐसी नायिका किसी भी सभ्य समाज में बड़ी सरलता से बदचलन या कुलटा की संज्ञा पा जाएगी। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गृहस्थ जीवन में प्रेम का अभाव भी एक बड़ा कारक है झुमूर का यह निर्णय लेने का दूसरे, वह प्रेम की भूखी है। इसके अलावा कई दिनों से हारून के इंटरेस्ट का लोप हो जाना, झुमूर के पढ़े – लिखे व्यक्तित्व का कुचला जाना, दांपत्य जीवन का अकेलापन, यांत्रिक संभोग की त्रासदी, नीरसता कारण हैं उसके अफजल से जुड़ने के। अफजल के साथ रहते हुए जमुना को प्रेम का सही अर्थ समझ आता है। तभी तो जमुना कहती है, "अफजल आपादमस्तक प्रेमी जीव था ! जब वह मुझे छूता है, उसके हाथों की ऊँगलियों में, उँगलियों की पोर – पोर में प्यार बसा होता है। औरत में यह समझने की स्वाभाविक क्षमता होती है मर्द के कौन से स्पर्श में प्यार मौजूद है, कौन से में नहीं ! वह स्पर्श चाहे कितना भी एक जैसा हो ! जो इंसान सच्चा प्यार नहीं करता, वही गुमनाम ख़त लिख पाता है, वही आग लगा सकता है, वही ध्वंस के बीज बो सकता है।"7

यौन शुचिता का प्रश्न तसलीमा अपने सभी उपन्यासों में उठा चुकी हैं, इसमें भी उठाया है। आज के इस इंटरनेट शासित - चालित और विज्ञापन के युग में स्त्री मात्र देह वाली बात हम सभी देख रहे हैं। स्त्रियों के संदर्भ में नैतिकता की अवधारणा उसके चरित्र और यौन शुचिता से संचालित होती है। तसलीमा के यहाँ नैतिकता के मापदंड ही बड़े अलग और प्रौढ़ हैं जो सभ्य समाज को विचित्र लग सकते हैं और आसानी से गले से नीचे भी नहीं उतर सकते। समाज की नज़र में जिसे घृणित और अश्लील कहा जाता है लेखिका के यहाँ वह स्त्री मुक्ति के लिए आवश्यक बन जाता है। स्त्री मुक्ति की बाबत तसलीमा का विचार है, "नारी स्वाधीनता का मतलब है – सेक्स स्वाधीनता। अधिकतर लोगों की यही धारणा है। इस जुमले में व्यंग्य छिपा होता है, लेकिन बात सच है। सेक्स – स्वाधीनता के बिना, नारी कभी भी सच्चे अर्थों में स्वाधनीता अर्जित नहीं कर सकती, कभी कर भी नहीं पाई। जिस नारी की देह उसके अपने अधिकार से बाहर चली जाती है, वह नारी किसी भी अर्थ में 'स्वाधीन नारी' नहीं कही जा सकती। "शिक्षित और स्वनिर्भर होने के बावजूद, इस नारी – विरोधी समाज में, नारियाँ 'सेक्स – गुलामी; से हरगिज मुक्ति नहीं पा सकतीं।"8 जिसका अधिकार उसकी देह पर भी नहीं भला वह कैसे मुक्त हो सकता है ? यही कारण है कि जिस देह को परदे के पीछे रखने में ही स्त्री की भलाई समझी जाती है वह लेखिका और नायिकाएँ अश्लील घोषित कर दी जाती हैं। यह महज देहवाद नहीं है यह अपने होने को असर्ट करने का एक छोटा सा बिंदु भी है। स्त्रियों के लिए जिस प्रकार आर्थिक स्वतंत्रता आवश्यक है उसी प्रकार यौन स्वतंत्रता भी है।

जमुना हो या झुमूर दोनों में अपनी देह को लेकर एक आदर का भाव है। बिना प्रेम के शरीर को छूना अपराध है। अपनी देह पर स्वयं का नहीं तो किसका अधिकार होगा ! दो औरतों के पत्र की जमुना के जीवन में जब हुमायूँ का प्रवेश होता है तो वह भी वह भी अतिपुरुष की मानसिकता से ग्रस्त नज़र आता है। उसकी भी चिंता जमुना के सतीत्व को लेकर है। और यही जमुना से उसके रिश्ते में आ रहे तनाव का कारण बनता है। बकौल जमुना, "कल रात हुमायूँ ने कहा, तुम्हें देख कर ऐसा लगता है, जैसे मेरे साथ ही तुमने पहली बार गृहस्थी बसाई है। लेकिन ऐसा है नहीं, मैं तुम्हारे जीवन में दूसरे नंबर पर हूँ। दूसरे नंबर पर हुमायूँ इस कदर जोर देता है कि लगता है, 'दूसरे नंबर का मामला उसे अब, भला नहीं लग रहा है।" 9

फेरा उपन्यास की कल्याणी विभाजन की त्रासदी के साथ – साथ विस्थापन की पीड़ा को भी झेलती है

और पुरुषों के अत्याचार का भी शिकार होती है। पीछे छूट जाता है उसका देश और प्रेमी भी। अनिर्वाण से विवाह कर वह घर — गृहस्थी की चक्की में पिसती रहती है। कल्याणी ने अनिर्वाण के साथ प्रेमविवाह किया था। पहली संतान बेटा न होने को लेकर वह ताने सुनती रहती है कुल जमा बारह वर्षों तक। वह जानती है कि बेटा को जन्म न देने से घर — गृहस्थी में स्त्री की कोई इज्जत नहीं रह जाती। इतना पढ़ा — लिखा होने पर भी कुल दीपक के लिए अनिर्वाण की ऐसी चाह कल्याणी को मर्मांतक पीड़ा से भर देता है। तिसपर भी तीस वर्षों तक गृहस्थी की चक्की में उलझकर वह अपने देश जाने की इच्छा मन में ही दबाकर रखती है। "घर — गृहस्थी ने उसे उसे इस तरह फँसा रखा था। दरअसल अनिर्वाण की हठधर्मिता ने उसे अब तक घर — गृहस्थी और उसके दायरे से कभी आगे बढ़ने ही नहीं दिया।" 10 वहीं दूसरी ओर कल्याणी की सहेली शरीफा धार्मिक रूढ़ियों और बंधनों का शिकार होकर घर की चारदीवारी में ही कैद होकर रह जाती है। उसका पति अतहर कठोर धार्मिक रूढ़ी ग्रस्त व्यक्ति है। जो शरीफा कभी धर्म को नहीं मानती थी वह अब नमाज़ पढ़ती है, धार्मिक नियमों को ढोती देखी जा सकती है। बिना पति के अनुमति के वह कहीं नहीं जा सकती।

लेखिका के यहाँ सारी पितृसत्तात्मक संरचनाओं यथा विवाह संस्था हो या धर्म, सामाजिक संरचनाएँ हों या राष्ट्र की विभेदकारी संरचनाएँ सभी की गहरी आलोचना मिलती हैं। धर्म तसलीमा की नज़र में बड़ा कारक है स्त्रियों के शोषण के पीछे। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है धर्म भी पितृसत्तामक निर्मिति है इसलिए वह भी स्त्रियों के शोषण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। धार्मिक आचार संहिताएँ स्त्री स्वातंत्र्य का हनन करती हैं और उन पर नैतिकता के दबाव को कसती रहती हैं। यह अपनी सत्ता को बचाए रखने हेतु पितृसत्ता द्वारा गढ़ा गया हथियार है। इसी को जानकर रमणिका गुप्ता प्रतिपादित करती हैं कि "स्त्री असमानता का मूल स्त्रोत ही धर्म है।"11 लज्जा उपन्यास में इसी धर्म की सांप्रदायिकता और आतंक के चलते अल्पसंख्यांकों पर हुए अत्याचारों का लेखिका स्त्रीवादी दृष्टी से शोध लेती हैं। युद्ध हों या दंगे इस प्रकार के त्रासों की आँच सबसे अधिक कोई झेलता है तो वह स्त्रियाँ ही हैं। ऐसे समय वे शक्ति प्रदर्शन का शिकार इसलिए होती हैं क्योंकि धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी ही हैं। जिसे दबाया गया या कि जो हाशिए पर हैं वे और शोषण के शिकार होने ही हैं। उन्मादी भीड़ द्वारा स्त्रियों पर किए गए अत्याचारों का वर्णन भी लज्जा उपन्यास में यत्र — तत्र चित्रित है। 'लज्जा' की किरणमयी के साथ बात दूसरी है। वह पूर्णत: अपने पति और बेटे पर ही निर्भर है। वह नौकरीपेशा नहीं है। घर की खस्ता हालत से वह अपने कंगन आदि बेच देती है। लेखिका ने उसका चित्रण एक उदारमना और निस्वार्थ स्त्री के रूप में ही किया है जिस रूप में पुरुष वर्ग उसे देखना चाहता है। वह बेटे के लिए 'कुमाता न भवति' का ही तत्व अपनाए रहती है। सुरंजन नौकरी नहीं करता फिर भी दोनों वक्त का खाना उसे बिना बोले मिल जाता है। किरणमयी का जीवन पति और बेटे की सेवा में स्वाहा हुआ जाता है। पितृसत्ता का दूसरा बिंदु उपन्यास में हिंसा और शोषक रूप में उपस्थित है। नायक सुरंजन के बदले की भावना का परितोष भी तो मुस्लिम लड़की को बलात्कृत करके ही होता है। इसका एक और उदाहरण माया का दिया जा सकता है जिसका लड़कों द्वारा अपहरण किया जाता है और अत्याचारों का शिकार भी होती है।

लेखिका की नायिकाएँ हैं बड़ी स्वाभिमानी इसलिए विद्रोह तो आप ही जगेगा। झुमूर, जमुना, और कल्याणी तीनों ही अपने — अपने अनुरूप निर्णय लेती हैं और सामाजिक नियमों को ताक पर रख देती हैं। जमुना और झुमूर अपनी शर्तों पर जीती हैं। कल्याणी नौकरीपेशा होकर भी अपने देश से बिछुड़ने की पीड़ा और पति द्वारा वहाँ पुन: न जाने की रोक — टोक सहती रहती है लेकिन अंतत: वह अपने कमाए पैसों से ही अपने देश लौटकर अपनी स्मृतियों को जी लेती है। यदि वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं होती तो अपने देश

लौटना उसका केवल सपना बनकर ही रह जाता। स्त्रियों का दोयम दर्जा ऐसी समस्या है जिसकी जड़ें सामाजिक व्यवस्था और धर्मों में निहित हैं। और तसलीमा यह जानकार ही इन पर आघात करती हैं। समाज और धर्म के नीति - नियम पुरुष को छूट देते हैं और स्त्रियों को बंधनों के अधीन रखते हैं। सामाजिक व्यवस्था और धर्म इन्हीं अर्थों में विभेदकारी हैं। इन्हीं के प्रति लेखिका की नायिकाएँ विद्रोह करती हैं। वे पितृसत्तात्मक संरचनाओं के चक्रव्यूह में फँसती तो है किंतु उनमें निर्णय लेने दम - ख़म है इसीलिए वे इनके पीछे की राजनीति को जान - समझकर उनके खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजाती हैं। वे स्त्रियों को लेकर बनी – बनाई सामाजिक – धार्मिक व्यवस्थाओं को चुनौती देती हैं और उन्हें बड़ी बर्बरता से ध्वस्त करती हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: स्पष्ट होता है कि तसलीमा नसरीन के उपन्यासों में पितृसत्ता किसी न किसी न रूप में उपस्थित है। कभी तो घर – परिवार में पति या पिता के रूप में तो कभी धर्म के आतंक के रूप में और सामाजिक – नीति नियमों और रूढ़ मानसिकता के रूप में भी। वस्तुत: पति कॉमरेड इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि उसे समाज द्वारा प्रदत्त अधिकारों, शक्तियों के कारण वह श्रेष्ठ और स्त्रियाँ दूसरे पायदान पर खड़ी हैं। पुरुष को अपनी सत्ता टिकाकर रखनी है। नौकरीपेशा होकर भी लेखिका की नायिकाएँ पितृसत्तात्मक दाँव – पेंचों का शिकार होती हैं किंतु वे उनसे लोहा लेना भी जानती हैं। लेखिका उन सभी सड़े – गले सामाजिक रीति – रिवाजों, पितृसत्तात्मक संरचनाओं, और विभेदकारी धर्मों की कड़ी आलोचना करती हैं जो स्त्री को इंसान के पद से ही च्युत करते हैं। लेखिका के यहाँ सारी पितृसत्तात्मक संरचनाओं यथा विवाह संस्था हो या धर्म, सामाजिक संरचनाएँ हों या राष्ट्र की विभेदकारी संरचनाएँ सभी की गहरी आलोचना मिलती हैं। धर्म तसलीमा की नज़र में बड़ा कारक है स्त्रियों के शोषण के पीछे। लेखिका की नायिकाएँ धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक – सांस्कृतिक और पितृसत्तात्मक संरचनाओं के विरुद्ध संघर्ष करनेवाली और अपनी स्वतंत्रता को अपने तईं हासिल करती हैं।

संदर्भ सूत्र :

1) नसरीन तसलीमा, दो औरतों के पत्र, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ - 64
2) पटेल किंगसन सिंह, नारीवादी आलोचना, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ – 168
3) नसरीन तसलीमा, दो औरतों के पत्र, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ – 32
4) सुजाता, स्त्री निर्मिति, सामयिक प्रकाशन, संस्करण प्रथम, 2019, पृष्ठ – 63
5) नसरीन तसलीमा, दो औरतों के पत्र, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019, पृष्ठ -
6) गिरी राजीव रंजन, (सं), स्त्री मुक्ति : यथार्थ और यूटोपिया, अनुज्ञा बुक्स, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ – 131
7) नसरीन तसलीमा, शोध, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ – 144
8) नसरीन तसलीमा, औरत का कोई देश नहीं, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ – 105
9) नसरीन तसलीमा, दो औरतों के पत्र, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ - 49
10) नसरीन तसलीमा, फेरा, वाणी प्रकाशन, आवृत्ति 2013, पृष्ठ 34
11) गीताश्री (सं), गुप्ता रमणिका, नागपाश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ – 86